शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
E ISSN 2320 – 0871
17 अक्टूबर 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

निर्मला पुतुल के काव्य संग्रह 'बेघर सपने' में आदिवासी स्त्री का संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व

डॉ.हरेन्द्र सिंह
पंजाब विश्वविद्यालय
चंडीगढ़, भारत

शोध संक्षेप

आदिवासी लेखन में स्त्री की अस्मिता एवं सरोकारों को मुखर अभिव्यक्ति देने वाली कवयित्रियों में निर्मला पुतुल प्रमुख हैं। इनकी कविताओं में स्त्री अपनी पहचान के लिए छटपटाती है। निर्मला पुतुल अपनी कविता के माध्यम से स्त्री अस्मिता के उन तमाम प्रश्नों पर विमर्श करती है, जो अभी तक अनछुए व अनसुलझे हैं। इसका कारण यह भी है कि निर्मला पुतुल स्वंय भी आदिवासी हैं और आदिवासी सरोकारों को गहराई से समझती हैं। उनकी शिराओं में आदिवासी मिट्टी का रस दौड़ता है। प्रस्तुत शोध पत्र में उनके काव्य संग्रह 'बेघर सपने' में आदिवासी स्त्री का संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व पर विचार किया गया है।

प्रस्तावना

'युद्धरत आम आदमी' के जुलाई-सितम्बर (2002) अंक में निर्मला पुतुल का साक्षात्कार प्रकाशित हुआ है। इस साक्षात्कार में वह आदिवासी समाज की विडम्बनाओं, पेचीदगियों और स्त्रियों के शोषण का विवरण प्रस्तुत करती हैं और यह भी बताती जाती हैं कि किस प्रकार एक समुदाय विशेष संक्रमणशील दौर में अपने शाश्वत मूल्यों को छिन्न-भिन्न होने की पीड़ा भोगता है। किस प्रकार उन मूल्यों को सहेजने की जद्दोजहद करता है। तथाकथित विकास की चकाचौंध और मृगमरीचिका में किस प्रकार आदिवासियों को खुले तौर पर ठगा जाता है तथा चंद चाटुकारों द्वारा अपने ही लोगों के जीवन को यातनामय बना दिया जाता है।

भ्रष्टाचार यहां भी कम नहीं है। कुछ चंट किस्म के आदिवासी अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए समूची बिरादरी का शोषण करते हैं। आदिवासी समाज के सामने वर्चस्व की चुनौतियाँ भी मौजूद हैं उनके सामने तीव्र गति से हो रहे शहरीकरण की समस्याएं भी हैं।

बेघर सपने और निर्मला पुतुल

'सिद्धो-कान्हू' जैसे आदिवासी नायक की उपेक्षा उनके समाज के ही कुछ स्वार्थी अराजक तत्व कर रहे हैं। अपने व्यक्तिगत और राजनीतिक स्वार्थों के लिए वे अपने ही महानायकों की छवि को धूमिल कर रहे हैं। सिद्धो-कान्हू की शहादत पर राजनीतिक गलियारों तक पहुंचने वाले तथाकथित आदिवासी शुभचिंतक व नायक आज आपस में लड़ मर रहे हैं और अपने ही लोगों को लड़वा-मरवा रहे हैं। क्योंकि-

हमारे प्रदेश के अगुवा
इन दिनों नौटंकी कर रहे हैं।1

'वह जो अक्सर तुम्हारी पकड़ से छूट जाता है' कविता में 'तीसरी स्त्री' का सच क्या है ? इस कविता को लिखने से बहुत समय पहले भी कवयित्री ने प्रोमिला को दिए एक साक्षात्कार में कहा है कि, 'लगभग सभी संगठनों का

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अक्टूबर 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

प्रतिनिधित्व ऊंचे घरानों की सभ्य और आधुनिक महिलाएं ही करती हैं। वह अपने ढंग से ही कुछ खास महिलाओं से घिरी रहती हैं। नीचे तबके से आने वाली सामान्य महिलाओं के प्रति उनका रवैया सम्मानजनक और प्रोत्साहन वाला नहीं होता, जिससे एक परिधि के अंदर आने वाली तमाम महिलायें भी उन्हें छोटी-छोटी परिधियों में बंट जाती हैं। यही तो विडम्बना है कि आज भूख की परिभाषा खाया-पीया आदमी गढ़ता है, और गरीबी की रेखा अमीर लोग खींचते हैं।2 इसलिए इस प्रसंग में निर्मला पुतुल की यह कविता सोलह आने सही प्रतीत होती है कि-

क्या तुम बता सकते हो
यह तीसरी स्त्री क्या सोच रही है?
एक स्त्री पीठ पर बच्चा बांधे धान रोप रही है
दूसरी सरकार गिराने और बनाने में लगी है
ओ आदिवासी अस्मिता पर बात करने वाली
झंडाबरदार औरतों
इन पंक्तियों के बीच
गुम हो गयी उन औरतों का पता
जिनका नाम तुम्हारी बहस में शामिल नहीं है।3

महज एक बोतल दारू और एक मुर्गे के एवज में अपनी ही बेटी को किसी गैर पुरुष के सुपुर्द कर देने वाली माँ किन सामाजिक प्रकार्यों का परिणाम है। क्या यह प्रश्न आदिवासी समाज की अशिक्षित, असभ्य मानसिकता का परिचायक नहीं है। आखिर वे क्या कारण हैं कि आज भी इन समाजों में लोगों को महज कुछ रुपयों के लिए अपने बच्चों को बेचना पड़ता है, और उन बच्चों को नगरों और महानगरों में ले जाकर उनसे पशुओं से भी बदतर व्यवहार किया जाता है या फिर मानव तस्करी की जाती है। विकास के तथाकथित माडल यहाँ क्यों असफल हो जाते हैं। बकौल सच्चिदानन्द सिन्हा, 'आम किसान और आदिवासी का महत्व महज मानव संसाधन के रूप में है जो इस विकास में श्रम ही आपूर्ति वैसे ही करते हैं, जैसे उनकी अधिग्रहीत हो रही भूमि, खदानों और जंगलों के खनिजों और वनोपज का करते हैं। दोनों आपूर्ति साथ-साथ होती है। जंगलों की लकड़ियां और खनिज सीधा कारखानों में पहुंचते हैं। उजाड़े गए किसान और आदिवासी औद्योगिक नगरों की झुग्गियों के माध्यम से दिहाड़ी एवं स्थायी मजदूर के रूप में नगर निर्माण या कारखानों के मशीनों को चलाने के लिए।'4

निर्मला पुतुल की कविताएं प्रश्न करती हैं, प्रश्नचिह्न लगाती हैं। आदिवासी स्त्री के मन को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती हैं। उनके जीवन को जीने का संघर्ष और उस संघर्ष को करते रहने की जीवटता इन कविताओं में दिखाई देती है। अभिजात्य पुरुष समाज उनका शारीरिक शोषण तो करता ही है उनके साथ जोर-जबरदस्ती भी करता है। किसी भी परिस्थितिवश अपने आदिम प्रदेश से शहरों में स्वेच्छा से कामकाज की तलाश में आकर या बहला-फुसला कर गुम हुई महिलाओं की खोज-खबर करना, जिनके इंतजार में उनकी बूढ़ी माँ की पथराई हुई आंखों में अभी भी उम्मीद की एक लौ शेष बची है।

मैं अपने इलाके की उन गुम हो गई लड़कियों को
ढूंढना चाहती हूँ
पहुंचना चाहती हूँ उन लोगों तक
समझना चाहती हूँ उनके जीवन और दिनचर्या का
गणित
और देखना चाहती हूँ उसके भीतर
कितना बचा है हमारा झारखण्ड
कितनी बची है उसकी भाषा में संताल परगना
के माटी का गंध।5

दरअसल आज विकास के नाम पर, रोजगार या बेहतर जीवन स्तर की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर चुके लोगों के माध्यम से उस प्रदेश विशेष की भाषा, संस्कृति के अस्तित्व पर भी संकट मंडरा रहा है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में अनेक समुदाय विलीन हो रहे हैं। भाषाएँ और संस्कृतियाँ नष्टप्राय हो रही हैं।

'आपके शहर में, आपके बीच रहते हुए, आपके लिए' कविता संताली समुदाय की भूख, बीमारी, शोषण, बेकारी का दस्तावेज है। यह ऐसा दस्तावेज है जिसमें चूहे पकाकर खा रहे भूखे नंगे लोगों की बात है। जिनकी लड़कियां महज कुछ पैसों में बिक जाती हैं, या उन मासूम लड़कियों का वीभत्स हश्र है जिनके साथ सामूहिक बलात्कार किया जाता है। यह कविता उस आदिवासी लड़की की चीत्कार भरी जिंदगी का दस्तावेज भी है जिसे नौकरी की उम्मीद में एक स्वयंसेवी संस्था के पचास वर्षीय मुखिया के हाथों तीन सालों तक यौन शोषण का शिकार होना पड़ा था। यह कविता उन गांवों की वास्तविकता का खुला चिट्ठा है जिन गांवों की भू-संपदा का विकास के नाम पर जी भरकर दोहन तो किया गया है, लेकिन वहां अभी तक मूलभूत सुविधाएँ जैसे सड़क, बिजली व स्वच्छ पेयजल नहीं पहुंचा है। जिनके बच्चे स्कूल जाने की बजाए महाजन के यहां बंधुआ मजदूर बनकर गिरवी पड़े हैं।

निर्मला पुतुल के लेखन का सार ही यह है कि 'मुक्ति उन्हें मिलती है जो मुक्ति चाहते हैं। और उससे बाहर निकलने के लिए हाथ-पांव मारते हैं। अपने परिवेश को जान-समझकर उसकी पेचीदगियों से बाहर निकले।'6 इनकी कविताओं में स्त्री विमर्श और आदिवासी विमर्श समानान्तर चलता है। कविताओं का एक-एक चरित्र अपने परिवेश की प्रामाणिक छवि है। निर्मला पुतुल की सबसे बड़ी खूबी यह है कि उनकी कविताओं में स्त्री और आदिवासी चिंतन के नाम पर मात्र खाना पूर्ति नहीं है या बौद्धिक आवागमन नहीं है, जो आजकल कतिपय सेलिब्रिटी लेखकों में देखने को मिलता है, बल्कि संवेदना का रिसता हुआ सोता है। इनकी कलम से स्त्री की पीड़ा उसी प्रकार फूट पड़ती है जैसे पहाड़ पर से धीरे-धीरे रिसता हुआ पानी।

मेरी आंखों में उजड़े जंगलों का बियावान दृश्य हैं
पलायन कर रहे लोगों की भीड़ है
मलेरिया, कालाजार से मरते लोगों के चेहरे हैं
जंगली हाथियों के उत्पात की दहशत है
भूख से हुई मौतों के मुद्दे पर लड़ते लोगों पर
पुलसिया जुल्म का आतंक है।7

निष्कर्ष

आदिवासी जनजीवन की इतनी पुख्ता व मर्मभेदी अभिव्यक्ति शायद कम ही लेखिकाओं के यहां देखने को मिले। आखिर आदिम शोषित, उपेक्षित व पीड़ित समाज के दर्द की दवा क्या है ? आखिर कब तक आदिवासियों के नाम पर झूठी नौटंकी और स्वार्थपूर्ण राजनीति चलती रहेगी ? इनके हिस्से का समुद्र लील कर अपनी स्वार्थ पूर्ति की जाऐगी। चाहे उन लोगों के तथाकथित शुभचिंतकों के द्वारा हो या वहां की स्थानीय सरकार द्वारा हो या फिर केन्द्र सरकार द्वारा। निर्दोष मासूमों की बलि चढ़ाकर उसके हिस्से का अनाज छीनकर, बेबस और मजलूम लोगों को सताया जाएगा। तथाकथित विकास के नाम पर इन लोगों के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन किया जाएगा, बेबस औरतों के साथ होने वाले बलात्कारों के बढ़ते आंकड़ों पर कब तक थोथी बहस होती रहेगी ? नक्सलवाद के जुल्मों की दास्तां इत्यादि ये तमाम अनुत्तरित प्रश्न निर्मला पुतुल की कविताओं का कथ्य हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. *पुतुल निर्मला, बेघर सपने (2014), आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा), पृष्ठ 53*
2. *गुप्ता, रमणिका (सं.), युद्धरत आम आदमी (2002), जुलाई-सितम्बर, पृष्ठ 58*
3. *पुतुल निर्मला, बेघर सपने (2014), आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा), पृष्ठ 18*
4. *देवी महाश्वेता, त्रिपाठी अरुण कुमार (सं.) माओवादी या आदिवासी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (2011), पृष्ठ 129*
5. *पुतुल निर्मला, बेघर सपने (2014), आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा), पृष्ठ 45*
6. *गुप्ता, रमणिका (सं.), युद्धरत आम आदमी (2002), जुलाई-सितम्बर, पृष्ठ 58*
7. *पुतुल निर्मला, बेघर सपने (2014), आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा), पृष्ठ 47*